ग्रामसभा का परिचय

ग्रामसभा व्यवहार के आधार पर पंचायती राज का लोक-केन्द्रित स्वरूप है। जनता द्वारा चुने गये ग्राम पंचायत के प्रतिनिधि जनता के समक्ष उपस्थित होकर उनके प्रश्नों के उत्तर से उनकी जिज्ञासाओं को शांत करने की चेष्टा करते है। यह गणतन्त्र का सबसे अनूठा और पंचायती राज का सबसे मौलिक स्वरूप है। ग्रामसभा में ही गणतन्त्र 'लोगों के लिये तथा लोगों द्वारा' वाला स्वरूप धारण करता है। ग्रामसभा ही वह आधारशिला है जिस पर पंचायती राज का पूरा विकसित ढाँचा अवस्थित है। इसका सरल, शांत, सामाजिक-आर्थिक जीवन प्राचीन समय से सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक वैज्ञानिकों को आकर्षित करता रहा है। आंद्रे बेते लिखते है "गाँव केवल वह स्थान नहीं है जहां लोग रहते है, यह वह अभिकल्पना है जिसमें भारतीय सभ्यता के आधारभूत मूल्य दिखाई देते है "। महात्मा गाँधी का मानना था कि सत्य और अहिंसा का बोध केवल गाँव के सरल जीवन में ही हो सकता है। भारत की आत्मा गाँवों में ही बसती है। भारत ऐसा पहला देश है जहाँ पर स्थानीय स्वशासन के प्राचीनकाल प्रमाण मिलते हैं। यहाँ प्राचीन समय से ही स्थानीय स्वशासन की सबसे छोटी इकाई ग्राम थी जहाँ का प्रमुख ग्रामीण होता था। ग्रामीण जीवन और ग्रामसभा का वर्णन वैदिककाल के विभिन्न ग्रन्थों में मिलता है।

लोकतंत्र के पहली सीढ़ी ग्रामसभा ही है। ग्रामसभा की भागीदारी के बिना किसी भी योजना का सफल क्रियान्वयन नहीं हो सकता है। यदि ग्राम सभाओं का सशक्त एवं क्षमताशील बना दिया जाए, तो भारत का भविष्य स्वस्थ, विकसित एवं खुशहाल के रूप में सामने आयेगा। गाँव के हित में योजना बनाना, बजट पारित करना, कर एकत्रण के नियम बनाना, योजनाओं को लागू करना, सार्वजनिक सम्पत्तियों की रक्षा करना, लाभार्थियों का चयन करना, जन सहभागिता निभाना तथा जन सुनवाई के माध्यम से पारदर्शिता एवं जवाबदेही लाने जैसे दायित्वों को लेकर ग्रामसभा की महत्वपूर्ण भूमिका है। 73 वें संविधान संशोधन अधिनियम में ग्रामसभा के गठन के बारे में प्रावधान का उल्लेख किया गया है। संवैधानिक व्यवस्था के अनुसार ग्रामसभा के गठन को टाला नहीं जा सकता।

महात्मा गाँधी ने देश के विकास में ग्रामीण जनों की सहभागिता की आवश्यकता को रेखांकित करते हुए कहा था कि " सच्ची लोकशाही केंद्र में बैठे 20 लोग नहीं चला सकते । वे दिल्ली जैसे बड़े शहर में है, उसे भारत के सात लाख गाँवों में बांटना चाहूँगा" । लोकतन्त्र का सच्चा अर्थ है लोगों का लोगों के लिये लोगों द्वारा किया जाने वाला शासन । सही मायने में ग्राम सभा में बैठा व्यक्ति जब अपने एवं क्षेत्र के विकास की बात को सर्वसम्मति से लागू करता है, तभी लोकतन्त्र की अवधारणा सुनिश्चित होती है । नि:संदेह रूप से ग्रामसभा ही वह सशक्त माध्यम है जिसके द्वारा ग्रामीण जनों की सक्रिय सहभागिता सुनिश्चित करके देश की वास्तविक तस्वीर बदली जानी संभव है । भारतीय संविधान के निर्माताओं ने भी इस तथ्य को बखूबी समझा । इसी का नतीजा था कि संविधान के नीति-निर्देशक सिद्धांतों में अनुच्छेद 40 के अंतर्गत राज्यों को 'ग्राम पंचायत' के गठन का निर्देश दिया गया , ऐसी परिकल्पना की गई कि ग्राम सभा के जरिये ग्राम स्वराज का सपना साकार करके गाँवों को विकास की दौड़ में समावेशित करना संभव है । ज्ञातव्य है कि 2 अक्टूबर, 1959 को पंडित जवाहर लाल नेहरू ने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के ग्राम स्वराज के स्वप्न को मूर्त रूप प्रदान करने हेतु राजस्थान के नागौर जिले में पंचायती राज का श्रीगणेश करते हुए कहा था, " हम अपने देश में लोकतंत्र की आधारशिला रख रहे है । यदि महात्मा गाँधी आज जीवित होते , तो बहुत प्रसन्न होते " । देश में 73 वें संविधान संशोधन अधिनियम 1992 के तहत ग्रामसभा को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया । अनुच्छेद 243 (क) के तहत ग्राम सभा को शक्तियाँ प्रदान करने तथा संविधान की 11 वीं सूची में निर्दिष्ट 29 विषयों के संबंध में योजना बनाने, क्रियान्वित करने तथा उनके मूल्यांकन की डोर ग्राम सभाओं के हाथ में आ गई ।

पंचायती राज का इतिहास

पंचायती राज हिन्दी भाषा के दो शब्दों से मिलकर बना है। जिसका अर्थ है पाँच जन-प्रतिनिधियों के समूह का शासन, ये पाँच प्रतिनिधि हैं – ब्राम्हाण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा परमेश्वर। भारत में पंचायती राज व्यवस्था की अवधारणा नवीन नहीं है, इसकी अपनी एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रही है और प्राचीन भारतीय राजनीतिक संस्थाओं में इसका उल्लेख मिलता है। प्राचीन भारत में गाँव एक आत्मनिर्भर आर्थिक एवं न्यायिक इकाई के रूप में अस्तित्वशील थे। जिन गाँव का आकार छोटा होता था, वे उद्योग-धंधों एवं अन्य मामलों में पास के बड़े गाँवों से संबन्धित हुआ करते थे। राज्य जैसी संस्था के विकसित होने से बहुत पहले गाँवों में निपटारा, सार्वजनिक महत्व के स्थानों – जोहड़ों, धर्मशालाओं आदि तथा स्थानीय विकास संबंधी कार्य गाँव के प्रमुख व्यक्ति मिलकर किया करते थे। प्रारंभिक अवस्था में समाज के विभिन्न वर्गों के पाँच प्रतिनिधि व्यक्ति मिलकर न्याय आदि कार्यों की व्यवस्था किया करते थे।

पाँच प्रमुख व्यक्तियों के समूह की यह संख्या पंचायत (पाँच+आयत) के नाम से लोकप्रिय हुई तथा इसके घटक पाँच कहलाये। न्याय व अन्य मामलों में निष्पक्ष राय एवं व्यवस्था के कारण यह एक आदर्श व निर्दोष प्रणाली रही है। निष्पक्ष न्याय व्यवस्था के कारण 'पंच परमेश्वर ' की अवधारणा विकसित हुई तथा पंचायत के निर्णय को ईश्वरीय निर्णय के समान सर्वोपरि स्थान मिला। व्यवहारतः यह उस प्रणाली को इंगित करता है जिसके द्वारा भारत की असंख्य ग्रामीण जनता को शासित किया जाता था एवं जो "स्वशासन " की मनोवृति को इंगित करता है (वीर, 2009)।

वैदिक काल में पंचायती राज

वेदों में पंचायत को विश: कहा जाता था। 5000 ई. पू. से 3500 ई. पू. तक वेदों में पंचायतों तथा उनके विभिन्न कर्मचारियों का उल्लेख मिलता है। वैदिक काल के आरंभ में ग्राम का प्रबंध गाँव के मुखिया द्वारा होता था, जिसे ग्रामिनी कहा जाता था। गाँव की चौपाल पर इस सभा के सदस्य बैठकर चर्चा करते थे। वैदिक

काल में सभा होती थी, जिसमे प्रत्येक नागरिक भाग लेता था, जहाँ राजा भी डरता हुआ जाता था कि उसे पदच्युत न कर दिया जाए। वैदिक काल में राज्य में पुरोहित, सेनापति तथा ग्रामिणी नामक तीन अधिकारी हुआ करते थे। इनमें ग्रामिणी ग्राम का अधिपति एवं पंचायत का प्रमुख नेता होता था। इस काल में ग्राम संगठित रूप में थे जो जनता के हित या लाभ के काम करते थे (शर्मा, 2009)।

बौद्धकाल में पंचायती राज

बौद्धकाल (600 ई. पू. से 400 ई. पू.) में ग्रामों की शासन व्यवस्था सुनिश्चित और संगठित थी। सम्पूर्ण जनपद के शासन की इकाई ग्राम थे। ग्राम पंचायतों को ग्राम सभा कहा जाता था। ग्रामसभा के शासक को ग्रामयोजक कहते थे, जिसका चुनाव गाँव के लोगों द्वारा किया जाता था। ग्रामयोजक का पद बहुत ही महत्वपूर्ण होता था क्यूंकि ग्राम से संबन्धित सभी मामलों को सुलझाने का कार्य ग्रामयोजक करता था। शराबबंदी, जुआ, पशु हिंसा, जैसी दूषित प्रवृतियों को निषिद्ध करने का अधिकार उसको प्राप्त था। ग्रामसभा में ग्रामयोजक के साथ ग्राम वृद्ध भी शामिल होते थे, इनके अलावा गाँव के अधिकांश व्यक्ति भी सम्मिलित हुआ करते थे जिनकी निर्णय निर्माण की प्रक्रिया को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका होती थी। (शर्मा, 2009)

मौर्यकालीन शासन में पंचायती राज

चन्द्रगुप्त मौर्य (321 ई. पू. से 305 ई.पू. के मध्य) के शासन काल में स्थानीय शासन के प्रबंधन में सुव्यवस्थित राज प्रणाली का उल्लेख तत्कालीन प्रधानमंत्री चन्द्रगुप्त के गुरु चाणक्य ने अपने “अर्थशास्त्र” नामक राजनीतिक ग्रंथ में विवेचनात्मक शैली में किया है। चन्द्रगुप्त के साम्राज्य में गाँव का शासन ग्रामसभा के द्वारा होता था तथा ग्राम का मुखिया ग्रामिक कहलाता था। वह पूरी तरह स्वतंत्र होता था। सरकार द्वारा उसकी नियुक्ति होती थी। ग्रामिक की सहायता के लिए ग्रामसभा होती थी, जिसके सदस्य वयोवृद्ध गाँव वालों द्वारा चुने जाते थे। इस शासन काल में ग्रामसभा को काफी अधिकार मिले हुए थे। वह गाँव के साधारण झगड़ों के लिए न्यायसभा का काम किया करती थी और अपराधियों को दण्ड देती थी। सभा का अपना कोष हुआ करता था जिसमें

अपराधियों के ऊपर अर्थदण्ड और गाँव के दूसरे साधनों से आय एकत्र होती थी। सड़क, पुल, पोखर आदि लोकोपकारी काम भी ग्रामसभा के हाथ में थे, साथ ही वह मनोरंजन का कार्य भी संभालती थी (देवपुरा,2012)।

गुप्तकालीन शासन में पंचायती राज

गुप्तकालीन साम्राज्य में भी ग्राम पंचायतों का उल्लेख मिलता है। ऐसा माना जाता है कि उस दौरान स्थानीय शासन में नगर शासन का अस्तित्व नहींथा अपितु अपने सम्पूर्ण प्रभाव से ग्राम पंचायते ही शासन की बागडोर संभालती थी। तत्कालीन उत्कीर्ण लेखों के अनुसार ग्रामसभा का प्रमुख महत्तर या ग्रामिक होता था जो एक सरकारी अधिकारी होता था। उसके अधीनस्थ कई कर्मचारियों की व्यवस्था होती थी। ग्रामसभा को ग्राम जनपद एवं पंचमंडली कहा जाता था। जिसके द्वारा व्यवस्था एवं विकास संबंधी महत्वपूर्ण निर्णय लिये जाते थे (शर्मा, 2009)।

राजपूत काल में पंचायती राज

राजपूत काल में ग्राम पंचायतों का महत्व घट गया। उन पर भी सामंतों की अधिकार की सत्ता छ गई। ग्राम शासन में दक्षिण भारत जितना संगठित था उतना उत्तर भारत नहींथा। राज्य के विशाल होने पर तत्कालीन शासन प्रान्तों, जिलों, अधिष्ठानों और ग्रामों में विभक्त होता था। इस दृष्टि से शासन पद्धति, गुप्त कालीन शासन पद्धति के आधार पर ही थी, परंतु शासन के विकेन्द्रीकरण की भावना पर आधारित होने के कारण केंद्रीय शक्ति को सदैव खतरा बना रहता था। सामंतगण बहुधा केंद्र से स्वतंत्र होने की चेष्ठा करते रहते थे (वीर, 2009)।

दक्षिण के चोल साम्राज्य में पंचायती राज

चोल शासकों के साम्राज्य में भी स्थानीय स्वशासन में ग्राम महत्वपूर्ण थे। ऐसा माना जाता रहा है कि दक्षिण भारत में स्वशासन या पंचायत प्रथा को संगठित करने एवं उसके स्वरूप को मुखरित करने में सर्वाधिक भूमिका

चोल शासकों की ही रही और इनमें राजराज चोल (प्रथम) को शुरुआत करने का श्रेय दिया जाता है। चोल शासन काल में पंचायतों को महासभा कहते थे जिसका मुखिया ग्रामिक होता था। चुनाव एवं योग्यता के लिए विशेष नियम बने हुए थे। प्रत्येक ग्राम सभा प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से कई समितियों में विभक्त थी (वीर, 2009)।

मध्य काल एवं मुगलकाल में पंचायती राज

भारत का मध्ययुगीन इतिहास काल उथल-पुथल, अस्थायी, अराजकता से युक्त था जिसे ऊहा-पोह और उथल-पुथल का काल कहा जा सकता है। इस कालावधि में कई सुल्तान, बादशाह एवं राजवंश आए और चले गये। सुल्तानों ने ग्रामीण समुदायों को अपने हाल पर ही छोडकर इनके प्रति तटस्थ नीति रखी। इससे ग्रामीण समुदाय को अपने आंतरिक प्रशासनिक संरचना, सामाजिक-सांस्कृतिक परम्पराओं और न्यायिक संस्थाओं को अक्षुण बनाये रखने में सहाता मिली। मध्यकाल के सल्तनत काल में राज्य की सबसे छोटी शासकीय इकाई ग्राम थी। ग्राम का प्रबंधन लंबरदारों, पटवारियों व चौकीदारों द्वारा किया जाता था। ग्राम पूरी तरह स्वतंत्र थे। मुगल काल में भी गाँव ही प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। आइने-अकबरी के अनुसार परगनों को गाँवों में विभाजित कर रखा था। पंचायतों द्वारा गाँवों का प्रबंध होता था (शर्मा, 2009)।

ब्रिटिशकाल में पंचायती राज

इस प्रकार हम देखते है कि प्राचीन काल से लेकर मध्य काल तक गाँव समाज की अपनी एक स्वतः स्फूर्ति व्यवस्था थी। जो पूरे गाँव जीवन को संचालित करती थी। ब्रिटिश शासन काल में भारत की प्राचीन सुदृढ़ शासन प्रणाली को तहस नहस करने में सर्वप्रथम पंचायत व्यवस्था को चुना गया, परंतु यह सुदृढ़ शासन प्रणाली टूटी नहींऔर उसका स्वरूप बिरादरी ने ले लिया, लेकिन इसके बाद विकास के मूल में अंग्रेजों ने पंचायत के महत्व को समझा और 1920 ई. में सभी प्रान्तों में ग्राम पंचायत अधिनियम पारित कर उसे अत्यल्प अधिकारी के साथ क्रियान्वित किया गया। अँग्रेजी शासन प्रणाली में पंचों का जनता द्वारा चुनाव न होकर वे सरकार द्वारा

मनोनीत किए जाते थे। उन्हे न्यायिक अधिकार भी नहींसौपें गये थे। ब्रिटिश शासन काल में पंचायतों के पुनर्जीवन के संबंध में जो प्रयास किए गए थे उनका मकसद सतही था वह केवल ब्रिटिश शासन की जरूरतों को ही पूरा करने का एक साधन थी (पडलिया, 2009)।

पंचायती राज व्यवस्था एवं महात्मा गांधी का ग्राम-स्वराज

गांधी जी ने कहा था – देश की आजादी का अर्थ मात्र राजनीतिक आजादी नहींहै। उसका अर्थ शहरी लोगों की आजादी भी नहींहै। वास्तविक आजादी वह होगी जिसमें ग्रामवासियों का अपने भाग्य का, अपने भविष्य के निर्माण का स्वामित्व प्राप्त होगा। यह उसके स्वशासन के जरिये हो सकता है और इसी का अर्थ है पंचायती राज। गांधी जी ने पंचायती राज को अपने चिंतन व विचारों के माध्यम से पुनर्जीवित किया। गांधी जी ने कहा था कि यह आदर्श समाज तभी सार्थक भूमिका निभा सकता है जब इसमें सत्ता के विकेन्द्रीकरण को मूल आधार बनाया जाए। आदर्श जनतंत्र को स्वावलंबी, स्वशासित, सततग्राही, ग्राम समाजों के रूप में तैयार किया जाए।

गांधी जी का पूर्ण विश्वास था कि भारत में पुनरुत्थान ग्रामीण स्वायत्त पंचायतों के विकास से ही संभव है। गांधी जी का ग्राम स्वराज का माध्यम पंचायती राज व्यवस्था है। गांधी जी का कहना है कि, मेरे सपनों का स्वराज तो गरीबों का स्वराज होगा। जीवन के जिन आवश्यकताओं का उपभोग राजा और अमीर लोग करते है, वही गरीबों को भी सुलभ होनी चाहिए। लेकिन इसका मतलब यह नहींकि हमारे पास उनके जैसे महल होने चाहिए। सुखी जीवन के लिए महलों की कोई आवश्यकता नही, लेकिन जीवन की वे सामान्य सुविधाएं जिनका उपयोग अमीर आदमी करता है। मुझे इस बात में बिल्कुल संदेह नहींहै कि हमारा स्वराज तब तक पूर्ण नहींहोगा जब तक वह गरीबों को सारी सुविधाएं देने की पूरी व्यवस्था नहीं कर देता (चंद्रशेखर, 2009)

स्वतंत्र भारत में पंचायती राज

सन 1947 में भारत स्वतंत्र हुआ, स्वतन्त्रता के बाद प्रांत/राज्य से निचले स्तरों पर लोकतन्त्र का प्रश्न चर्चा का सबसे महत्वपूर्ण विषय रहा है। जब भारत में संविधान निर्मात्री सभा का गठन किया गया तब सभा में संविधान

की संरचना और मूल आधार को लेकर जबरदस्त बहस हुई। देश के संविधान निर्माताओं ने निर्माण के अवसर के रूप में व्याख्यायित किया। लोकतन्त्र की सबसे छोटी इकाई पंचायतों की स्थापना के बारे में जो सदियों से भारत के शासन संचालन का आधार रही थी, संविधान सभा में विचार-विमर्श ही नहींकिया गया। संविधान निर्माताओं के संविधान का प्रारूप जब गांधीजी जो दिखाया गया तो गांधी जी ने उसे देखकर लौटा दिया और कहा इसमें तो पंचायतों की व्यवस्था ही नहीं....यदि भारत को नष्ट नहींहोना है, तो हमें सबसे निचले स्तर से काम आरंभ करना होगा, अन्यथा उच्च तथा मध्य का तंत्र लड़खड़ाकर गिर जाएगा, स्वराज का अर्थ कुछ लोगों के हाथ में क्षमता नहींहै बल्कि बहुमत के हाथ में यह क्षमता है, जिससे वह शासन को नियंत्रित कर सके, अर्थात विकेन्द्रीकरण ही भारत के तंत्र का समाधान है । डॉ. अंबेडकर इसके पक्ष में नहींथे, उन्होने कहा ग्राम स्थानीयवाद, अज्ञान के अड्डे, संकुचित मस्तिष्क और सांप्रदायिकता के सिवा और क्या ? मुझे प्रसन्नता है कि भारत के संविधान के प्रारूप में ग्राम का बहिष्कार किया गया है और व्यक्ति को इकाई माना है। उनके विचारों का कई सदस्यों ने विरोध किया, फलस्वरूप संविधान सभा को इस ओर ध्यान गया।

स्वतंत्र भारत के पंचायती राज के इतिहास, ग्रामीण स्वराज के महात्मा गांधी के प्रबल समर्थन एवं लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण के प्रति राष्ट्रीय वचनबद्धता के बावजूद भारतीय संविधान के प्रथम प्रारूप में पंचायतों से संबन्धित कोई प्रावधान नहींथा। महात्मा गांधी ने इसे ऐसी चूक माना जिसमें अविलंब सुधार किया जाना चाहिए। अंततः संविधान के राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों के अनुच्छेद 40 में यह निर्दिष्ट किया गया है कि राज्य ग्राम पंचायतों का संघटन करने के लिए अग्रसर होगा, तथा उनको ऐसी शक्तियाँ और प्राधिकार प्रदान करेगा जो उन्हे स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए अवाश्यक हो (वीर, 2009)।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की दिशा में पहला प्रयास सामुदायिक विकास कार्यक्रम का शुभारंभ था। यह कार्यक्रम गांधी जयंती 2 अक्टूबर, 1952 से प्रारंभ किया गया। इस कार्यक्रम के बारे में योजना आयोग का मत था कि "सामुदायिक विकास केंद्र को इस रूप में विकसित करना सरल होगा कि वह ग्रामीण तथा नगरीय दोनों ही क्षेत्रों में समाज कल्याण के विकास का बीज सिद्ध हो सके"।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य "अधिकतम लोगों का अधिकतम कल्याण" करना था। इस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु इस कार्यक्रम में कई कार्य निर्धारित किए गए, उनमें प्रमुख थे – परती एवं बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाना, उन्नत कृषि उपकरणों की व्यवस्था, कृषकों तथा कर्मचारियों आदि का प्रशिक्षण, कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देना, आवास प्रबंध, शिक्षा प्रबंध, लोक स्वास्थ्य संबंधी कार्यक्रमों की व्यवस्था इत्यादि। यह कार्यक्रम सरकारी तंत्र और ग्रामीण जनता के बीच की दूरी को कम करने के अपने महत्वपूर्ण उद्देश्य में विफल रहा क्योंकि सामुदायिक विकास कार्यक्रम के प्रशासन का उत्तरदायित्व नौकरशाही को ही सौपा गया, किन्तु विद्यमान संगठनात्मक ढाँचे में हेर-फेर कर दिया गया था। इस संबंध में रजनी कोठारी जैसे विद्वानों का मत है कि सामुदायिक विकास कार्यक्रम नौकरशाही द्वारा संचालित होने के कारण विफल हो गया। इन कार्यक्रमों के संचालन में स्थानीय लोगों को भागीदारी नहीं बनाया गया, जबकि स्थानीय समस्याओं तथा तत्संबंधी समस्याओं का ज्ञान स्थानीय लोगों को ही अधिक होता है। लेकिन इस सामुदायिक विकास कार्यक्रम में सरकारी मशीनरी के जरिये गाँव के लोगों की मनोवृति बदलने की आशा की गई, नतीजा यह हुआ कि गाँवों की उन्नति स्वयं करने की अपेक्षा ग्रामीण जनता सरकार का मुँह देखती रही (पुरण, 2009)।

पंचायती राज से संबन्धित समितियां

बलवंत राय मेहता समिति, 1957

सामुदायिक विकास कार्यक्रमों का मूल्यांकन करने के लिए एवं स्थानीय स्वशासन में सुधार हेतु अनुशंसाएँ देने के लिए भारत सरकार ने 1957 में गुजरात की तत्कालीन मुख्यमंत्री बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। दिसम्बर, 1957 में प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन में समिति ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम की असफलता का कारण लोकप्रिय नेतृत्व का अभाव बताया। समिति ने महसूस किया कि गाँवों में लोकतन्त्र की स्थापना के लिए सच्चे अर्थों में सत्ता का विकेन्द्रीकरण होना चाहिए। मेहता समिति ने तीन सोपानों वाली स्थानीय सरकार की प्रणाली की सिफारिश की जिसे जवाहर लाल नेहरू ने पंचायती राज का नाम दिया। बलवंत राय मेहता समिति के पाँच मुख्य सिद्धांत थे – पंचायती राज संस्थाओं की तीन स्तरीय प्रणाली होनी चाहिए – ग्राम स्तर पर ग्राम पंचायत, खण्ड स्तर पर पंचायत समिति व जिला स्तर पर जिला परिषद, ये संस्थाएं निर्वाचित हो, पंचायती राज संस्थाओं को पर्याप्त वित्तीय स्रोत उपलब्ध कराए जाएं , विकास का नियोजन एवं क्रियान्वयन इन्हीं संस्थाओं द्वारा होनी चाहिए (पुरण, 2009)।

अप्रैल, 1958 में बलवंत राय मेहता समिति की सफारिशों को स्वीकार कर लिया गया। सर्वप्रथम राजस्थान विधानसभा के प्रावधानों के आधार पर 2 अक्टूबर, 1959 को राजस्थान के नागौर जिले में पंचायती राज व्यवस्था का पंडित जवाहर लाल नेहरू द्वारा शुभारंभ किया गया। 1959 के बाद लगभग एक दशक तक पंचायती राज की प्रगति की दिशा में भारत सरकार एवं विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा प्रभावी कदम उठाये जाते रहे। किन्तु इसके पश्चात पंचायती राज एवं लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण प्रणाली के प्रति जो प्रारम्भिक उत्साह था, वह ठंडा सा पड़ता दिखाई देने लगा। केंद्र में तत्कालीन नेतृत्व के अधीन राज्य सरकारों ने पंचायती राज को मजबूत करने का प्रयास किया। फिर भी यह उत्साह केवल पाँच वर्ष (1959-1964) तक रहा। इसके बाद ठहराव का चरण (1965-1969) आया। इस चरण के दौरान हस्तान्तरित योजनाओं एवं कार्यक्रमों को पर्याप्त वित्तीय संसाधन बढ़ाने के कोई ठोस प्रयास नहीं किये। यद्यपि पंचायती राज संस्थाओं का एक महत्वपूर्ण ढाँचा

अस्तित्व में आया, किन्तु व्यवहार में इसकी प्रभावशीलता सीमित रही। इस प्रकार (1969-1977) का काल पंचायती राज संस्थाओं के लिए पतन का काल रहा (खान, 2009)।

अशोक मेहता समिति (1977)

1977 में राष्ट्रीय स्तर पर प्रथम बार कांग्रेस के स्थान पर गठित जनता पार्टी की सरकार स्थानीय स्तर के निकायों की शक्तियों एवं कार्यों का विकेन्द्रीकरण करने की इच्छुक थी। इसलिए पंचायती राज की कार्यप्रणाली का अध्ययन करने हेतु व प्रचलित ढाँचे में आवश्यक परिवर्तन सुझाने हेतु 12 सितम्बर, 1977 को अशोक मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया गया। अशोक मेहता समिति ने पंचायती राज के विकास का विश्लेषण करते हुए इसे तीन काल खण्डों में विभाजित किया है। 1960-64 स्थापना काल, 1964-69 गतिहीनता का कल तथा 1969-77 पतन का काल। समिति ने अपने विधिवत अध्ययन एवं आकलन में पाया कि पंचायती राज संस्थानों की असफलता का प्रमुख कारण राजनीतिक इच्छा शक्ति का अभाव रहा है। मुख्य रूप से इन संस्थाओं में सत्ता की प्रतिस्पर्धा के फलस्वरूप उत्पन्न राजनीतिक गुटबाजी, भ्रष्टाचार, कानून के प्रति सम्मान का अभाव, राजनीतिक हस्तक्षेप, स्थानीय निष्ठा, सत्ता का मोह और सेवा भावना का अभाव रहा है। अशोक मेहता समिति ने अपनी रिपोर्ट अगस्त 1978 में सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। समिति ने पंचायती राज संस्थाओं के त्रिस्तरीय स्वरूप के स्थान पर द्विस्तरीय स्वरूप की अनुशंसा की (पुरण, 2009)। वे स्तर थे – जिला परिषद और मण्डल पंचायत। इस समिति की अनुशंसाएँ निम्नलिखित थीं –

1. विकास कार्यक्रमों एवं योजनाओं के कार्यान्वयन का उत्तरदायित्व जिला परिषद का हो।
2. ग्रामीण पंचायत के स्थान पर मण्डल पंचायत हो जिसका गठन 15,000 से 20,000 तक की जनसंख्या के आधार पर हो।
3. ग्रामसभा का महत्वपूर्ण स्थान हो।
4. पंचायती राज संस्थाओं का चुनाव दलीय आधार पर हो।
5. पंचायती राज संस्थाएँ समिति प्रणाली के आधार पर अपने कार्यों का सम्पादन करें।

6. जिला परिषद सहित जिले के सभी अधिकारी अंततः जिला परिषद के मातहत रखे जाएँ।
7. पंचायती राज वित्त आयोग के रूप में एक नया संगठन प्रत्येक राज्य में गठित किया जाये जो जिला योजना हेतु प्रत्येक को उसके विकास स्तर एवं आवश्यकताओं के अनुरूप धन आवंटित करें।
8. राज्य सरकार से प्राप्त अनुदान के अतिरिक्त पंचायती राज संस्थाओं को अपने स्वयं के स्रोत भी विकसित करने चाहिए।
9. न्याय पंचायतों को विकास पंचायतों के साथ न मिलाया जाए।
10. विकास संबंधी कार्यक्रमों की योजना तैयार करना जिला परिषदों की जिम्मेदारी होगी तथा उनका कार्यान्वयन मण्डल पंचायतों की जिम्मेदारी होगी।

अशोक मेहता समिति की सिफारिशों को केंद्र सरकार ने लागू नहीं किया। आंध्र प्रदेश व कर्नाटक में ही कुछ सिफारिशों को अपनाया गया (खान, 2009)।

हनुमंथ राव समिति, 1992

1982 में योजना आयोग द्वारा डॉ. सी. एच. हनुमंथ राव के नेतृत्व में योजना विशेषज्ञों के एक दल का गठन किया गया था। मई, 1984 में प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन में दल का सुझाव था कि योजनाओं का विकेन्द्रीकरण होना आवश्यक है। विकास की योजनाएँ केंद्रीकृत रही है, जिनमें स्थानीय लोगों की सहभागिता का अभाव रहा है। इसी कारण योजना निर्माण प्रक्रिया के चरण से ही जन-जन की सहभागिता को सुनिश्चित करना चाहिए (खान, 2009)।

जी. वी. के. राव समिति, 1985

ग्रामीण पिछड़ापन तथा निर्धनता को दूर करने एवं ग्रामीण स्थानीय शासन के पुनर्गठन के तरीके सुझाने हेतु तत्कालीन केंद्र सरकार ने 1985 में जी. वी. के. राव की अध्यक्षता में एक समिति का गठित की। योजना आयोग के परामर्श से राव समिति ने अपना प्रतिवेदन तैयार किया। इसमें प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की एक

साहसिक योजना प्रस्तुत की गई। समिति का यह मत था कि सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास की जिम्मेदारी केवल सरकारी मशीनरी (नौकरशाही) पर नहीं थोपनी चाहिए। यह आवश्यक है कि स्थानीय लोगों व उनके प्रतिनिधियों को ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों को तैयार करने व उनके क्रियान्वयन में प्रभावी रूप से सहभागी बनाया जाए। इन संस्थाओं के चुनाव नियमित रूप से कराये जाये। समिति ने यह भी सिफारिश की कि जिले को नीति-नियोजन व कार्यक्रम क्रियान्वयन की आधारभूत इकाई बनाये जाये। समिति द्वारा पहली बार विविध स्तरों पर अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति एवं महिलाओं के लिए आरक्षण की भी सिफारिश की गई। एक अन्य प्रमुख सिफारिश के रूप में समिति ने जिला बजट की अवधारणा प्रतिपादित की (वीर, 2009)।

लक्ष्मीमल सिंघवी समिति, 1986

भारत में पंचायती राज की विकास यात्रा के रूप में 1986 में सिंघवी समिति भी प्रमुख कड़ी थी। 16 जून, 1986 को ग्रामीण विकास विभाग, भारत सरकार ने लक्ष्मीमल सिंघवी की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया तथा उसे पंचायती राज के पुनर्जीवन के संदर्भ में सुझाव देने का कार्य सौंपा। समिति ने 5 नवम्बर, 1986 को अपने विचार पत्र में महत्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किये। समिति का निष्कर्ष था कि पंचायती राज संस्थाएं सैद्धांतिक अस्पष्टता, राजनीतिक इच्छा का अभाव एवं राष्ट्रीय स्तर पर प्राथमिकता नहीं दिये जाने की प्रवृत्ति से ग्रस्त रही है। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की वृद्धि और विकास पर दृष्टिपात करने के पश्चात सिंघवी समिति ने लगभग विस्मृत ग्रामसभा को पुनर्जीवित किया, जिसमें ग्राम पंचायत के सभी मतदाता शामिल हो तथा तथा इसे प्रत्यक्ष प्रजातंत्र के अवतार की संज्ञा दी। समिति ने पहली बार पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा देने का सुझाव दिया। समिति ने गाँव के लोगों के लिए न्याय पंचायत की स्थापना का सुझाव दिया। इसके अलावा इस समिति ने पंचायतों को आर्थिक रूप से सक्षम बनाने हेतु अधिकाधिक वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराने की बात कही (पुरण, 2009)।

73 वाँ संविधान संशोधन, 1992

पी. वी. नरसिंहाराव सरकार ने राजीव गाँधी सरकार द्वारा संचालित पंचायती राज संस्थाओं से संबन्धित विधेयक में कुछ संशोधन कर 16 दिसम्बर, 1991 को 72 वें संविधान संशोधन विधेयक के रूप में लोकसभा में पेश किया। विधेयक को संयुक्त संसदीय समिति को सौंपा गया। उक्त समिति ने अपनी सम्मति जुलाई, 1992 में दी तथा विधेयक क्रमांक को परिवर्तित कर 73 वाँ संविधान संशोधन कर दिया, जिसे 22 दिसम्बर, 1992 को लोकसभा ने तथा 23 दिसम्बर, 1992 को राज्यसभा ने पारित कर दिया। इसे 17 राज्यों के राज्य विधानसभाओं द्वारा अनुमोदित किये जाने पर राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए भेजा गया। राष्ट्रपति द्वारा 20 अप्रैल, 1993 को इस विधेयक पर अपने स्वीकृति प्रदान की तथा इसे 25 अप्रैल, 1993 से लागू किया गया। इस संशोधन द्वारा संविधान के पूर्ववर्ती भाग “8” के पश्चात “9” जोड़ा गया है जिसका शीर्षक “पंचायत” है। इसके द्वारा अनुच्छेद 243 में पंचायतों से संबन्धित प्रावधान किये गये है जिसमें 15 उप-अनुच्छेद हैं। इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं –

1. ग्रामसभा एक ऐसा निकाय होगा जिसमें ग्राम स्तर पर पंचायत क्षेत्र में मतदाताओं के रूप में पंजीकृत सभी व्यक्ति शामिल होंगे। ग्रामसभा राज्य विधानमंडल द्वारा निर्धारित शक्तियों का प्रयोग तथा कार्यों को सम्पन्न करेगी।
2. प्रत्येक राज्य में ग्राम, मध्यवर्ती व जिला स्तर पर पंचायतों का गठन किया जायेगा।
3. राज्य विधानमंडल द्वारा निर्मित विधि के प्रावधानों के अनुरूप पंचायतों का गठन किया जायेगा। प्रत्येक पंचायत सदस्यों का निर्वाचन प्रत्यक्ष निर्वाचन प्रक्रिया से किया जायेगा। जिसमें सम्पूर्ण पंचायत क्षेत्र को उतने ही निर्वाचन क्षेत्रों में विभक्त किया जायेगा जितने सदस्य उस क्षेत्र से निर्वाचित किए जायेंगे। पंचायत के सदस्यों की संख्या का निर्धारण जनसंख्या के अनुपात में किया जायेगा। राज्य विधानमंडल विधि द्वारा ग्राम पंचायतों के न होने पर जिला स्तरीय पंचायतों में प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करेगा तथा इसी प्रकार मध्यवर्ती पंचायतों के प्रमुखों का जिला स्तरीय पंचायतों में प्रतिनिधित्व

सुनिश्चित करेगा। पंचायत का प्रमुख तथा पंचायत के अन्य सदस्य चाहे वे पंचायत क्षेत्र के निर्वाचन क्षेत्र से प्रत्यक्षतः निर्वाचित हों या न हों मात्र ही पंचायतों की सभाओं में वोट देने के अधिकार से युक्त होंगे। ग्राम स्तरीय पंचायतों के प्रमुख का निर्वाचन राज्य विधानमंडल द्वारा अनुमोदित विधि के प्रावधानों के अनुसार किया जायेगा। मध्यवर्ती या जिला स्तरीय पंचायतों के प्रमुखों का निर्वाचन इन पंचायतों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा किया जायेगा।

4. प्रत्येक पंचायत में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के लिये स्थान आरक्षित होंगे। यह स्थान पंचायत में उनकी जनसंख्या के अनुपात में निर्धारित किये जाएंगे। यह स्थान एक पंचायत में चक्रानुक्रम से विभिन्न निर्वाचित क्षेत्रों में आरक्षित किये जायेंगे। अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के लिये आरक्षित स्थानों में कम से कम एक तिहाई महिलाओं के लिये आरक्षित होंगे। प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले कुल स्थानों में से न्यूनतम एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिये आरक्षित किये जायेंगे (जिसमें अनुसूचित जाती एवं अनुसूचित जनजाति की महिलाओं के लिये आरक्षित स्थान भी सम्मिलित हैं) ये स्थान चक्रानुक्रम से एक पंचायत के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों में आरक्षित किये जायेंगे।
5. प्रत्येक पंचायत की कार्यावधि 5 वर्ष होगी। इसकी कार्यावधि की समाप्ति के पूर्व ही नए चुनाव कराये जायेंगे। यदि पंचायत को 5 वर्ष से पूर्व ही भंग कर दिया जाता है तो 6 माह की अवधि समाप्त होने के पूर्व चुनाव कराये जायेंगे।
6. राज्य विधान मण्डल विधि द्वारा पंचायतों को ऐसी शक्तियाँ प्रदान करेंगे जो कि उन्हें स्वशासन की संस्था के रूप में कार्यरत बना सके तथा जिनसे पंचायत आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय के लिये योजनाएँ तैयार कर सकें एवं 11 वीं अनुसूची में समाहित विषयों सहित आर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय की योजनाओं को क्रियान्वित कर सके।

7. राज्य विधान मण्डल पंचायतों को विनिर्दिष्ट कर, चुंगी एवं फीस लगाने एवं संग्रहित करने के लिये अधिकृत करेगा। संबन्धित राज्य सरकार राज्य की आकस्मिक निधि से पंचायत को पर्याप्त सहायता एवं अनुदान देगी।
8. राज्यों के राज्यपाल इस अधिनियम के लागू होने के एक वर्ष के अंदर तथा इसके पश्चात प्रत्येक पाँच वर्ष बाद पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करने और समुचित सिफारिशें करने के लिये वित्त आयोग का गठन करेंगे। ये सिफारिशें राज्यों की संचित निधि से सहायता अनुदान आदि से संबंधित होगी। राज्यपाल इन सिफारिशों को इस व्याख्या के साथ कि इन सिफारिशों को लागू करने के लिये क्या प्रयत्न किए जाए, राज्य विधानमंडल में रखवायेगा।
9. राज्य विधान मण्डल विधि द्वारा पंचायतों द्वारा खाते तैयार करने तथा इन खातों की लेखा परीक्षा संबंधी प्रावधानों का निर्माण करेगा।
10. राज्यपाल द्वारा नियुक्त राज्य चुनाव आयुक्त से संरचित राज्य चुनाव आयोग ही मतदाता सूचियों को तैयार करने में अधीक्षण, निर्देशन एवं नियंत्रण रखेगा तथा वही पंचायतों के समस्त चुनाव का संचालन करवायेगा।
11. यह अधिनियम संविधान के अनुच्छेद 243(जी) द्वारा एक नई 11 वीं सूची जोड़ता है। जिसमें अग्रलिखित 29 विषय है – 1. कृषि प्रसार सहित कृषि 2. भू-सुधार एवं मृदा संरक्षण 3. लघु सिचाई, जल प्रबंध एवं जल संभर विकास 4. पशुपालन, दुग्धशाला एवं मुर्गीपालन 5. मत्स्य पालन 6. सामाजिक वानिकी एवं फार्म वानिकी 7. लघु वन उत्पाद 8. खाद्य संसाधन उपयोगों सहित लघु उद्योग 9. खादी, ग्राम एवं कुटीर उद्योग 10. ग्रामीण आवास 11. पेयजल 12. ईधन 13. सड़कें, पुलिया, सेतु, घाट, जलमार्ग एवं संचार के अन्य साधन 14. विद्युत वितरण सहित ग्रामीण विद्युतीकरण 15. ऊर्जा के गैर परंपरागत स्रोत 16. गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम 17. प्राथमिक एवं माध्यमिक स्कूलों सहित शिक्षा 18. तकनीकी प्रशिक्षण एवं व्यावसायिक शिक्षा 19. प्रौढ़ एवं अनौपचारिक शिक्षा 20. पुस्तकालय

21. बाजार एवं मेलें 22. सांस्कृतिक क्रियाकलाप 23. प्राथमिक चिकित्सा केंद्र एवं उपचार केन्द्रों सहित स्वास्थ्य एवं स्वच्छता 24. परिवार कल्याण 25. महिला एवं बाल विकास 26. सामाजिक कल्याण 27. कमजोर वर्गों का कल्याण, विशेषकर अनुसूचित जाति कल्याण 28. जल वितरण व्यवस्था 29. सामुदायिक संपत्ति का अनुरक्षण।

इस प्रकार 73 वें संविधान संशोधन द्वारा मृतप्रायः पंचायतों को जीवन प्रदान किया गया है। संवैधानिक दर्जा दिये जाने से उनका अस्तित्व सुरक्षित हो गया है। इस अधिनियम की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इससे पंचायतों के गठन में एकरूपता आयी और इसके निर्वाचन नियमित होने प्रारम्भ हो गये। 73 वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायतों को न केवल प्रशासनिक अधिकार प्राप्त हुए बलकि वित्तीय संसाधनों की गारंटी भी प्राप्त हुई है (खान, 2009)।

छत्तीसगढ़ पंचायती राज अधिनियम

मध्य प्रदेश को दो भागों में अलग करने के बाद 1 नवम्बर 2000 को छत्तीसगढ़ राज्य अस्तित्व में आया। छत्तीसगढ़ बनाने के संबंध में संस्थागत और वैधानिक कदम सबसे पहले 1994 में उठाए गए। वर्ष 2000 में केंद्र की राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन सरकार द्वारा मध्य प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 पारित किया गया, जिससे वर्तमान मध्यप्रदेश एवं छत्तीसगढ़ राज्य का निर्माण हुआ। मध्य प्रदेश पुनर्गठन की धारा 78 एवं 79 के अनुसार, मध्य प्रदेश में लागू सभी कानून छत्तीसगढ़ राज्य में लागू होंगे, जब तक कि नए कानून न बन जाए या पूर्व के क़ानूनों को समाप्त ना कर दिया जाए। इसी आधार पर, मध्यप्रदेश में लागू पंचायती राज कानून भी छत्तीसगढ़ में लागू किया गया, जिसे छत्तीसगढ़ पंचायती राज अधिनियम 1993 नाम दिया गया जो कि छत्तीसगढ़ में वर्तमान पंचायत व्यवस्था का आधार बना। छत्तीसगढ़ में जनता और शासन को ज्यादा नजदीक लाने के उद्देश्य से त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था संचालित की जा रही है।

छत्तीसगढ़ पंचायती राज अधिनियम 1993 ग्रामसभा को विशेष अधिकार देता है। ग्राम सभा, ग्राम पंचायतों के कार्यों की निगरानी कर सकती है और उन पर सवाल उठा सकती है। ग्रामसभा गाँव के लिये वार्षिक योजना

पारित कर सकती है, जिन्हें कि उच्च स्तर की पंचायती राज संस्थाओं को अपनी योजनाओं में शामिल करना होता है। ग्रामसभा 3 लाख रु. तक की परियोजनाओं के अपने निर्णय को ग्राम पंचायत पर निर्भर हुए बिना खुद क्रियान्वित कर सकती है (नरूला, 2016)।

भारत में नक्सलवाद

रूसी क्रांति से प्रेरित नक्सलवादी विचारधारा के लोगों के लिए 'नक्सलवाद' मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओत्सेतुंगवाद के क्रांतिकारी पर्याय के रूप में जाना जाता रहा है। कुछ समय पहले तक नक्सलवाद को सामाजिक-आर्थिक समस्या माना जाता रहा है, मगर अब इसने चरमपंथ की शक्ल अख्तियार कर ली है। नक्सलवाद का जन्म पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले में नेपाल की सीमा से लगे एक कस्बे नक्सलबाड़ी में गरीब किसानों की कुछ माँगों जैसे भूमि सुधार और बड़े खेतिहर किसानों के अत्याचार से मुक्ति को लेकर शुरू हुआ था।

नक्सलवाद के समर्थक मानते हैं कि प्रजातंत्र कि प्रजातंत्र के विफल होने के कारण नक्सली आंदोलन का जन्म हुआ और मजबूर होकर लोगों ने हथियार उठाए लेकिन वास्तविकता यह है कि नक्सली आंदोलन अपने रास्ते से भटक गया है। इसका तात्कालिक कारण है कि न व्यवस्था सुधर रही है और न इसके सुधरने के संकेत हैं, इसलिए नक्सली आंदोलन बढ़ रहा है। इसमें होने वाली राजनीति को देखकर सोचना पड़ता है कि वर्ग संघर्ष बढ़ाने के पीछे राजनीति है या राजनीति के कारण वर्ग संघर्ष बढ़ा है। वर्तमान में नक्सलियों के संगठन पीपुल्स वार ग्रुप और माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर (एमसीसी) दोनों मुख्यतः बिहार, झारखंड, उड़ीसा और छत्तीसगढ़ में सक्रिय हैं, जिनका शुमार पिछड़े व गरीब राज्यों में होता है। पीडब्लूजी का दक्षिणी राज्य आंध्र के पिछड़े क्षेत्रों में बहुत प्रभाव है। नक्सलवादी नेताओं का हमेशा आरोप रहा है कि भारत में भूमि सुधार की रफ्तार बहुत सुस्त है। उन्होंने आँकड़े देकर बताया कि चीन में 45 प्रतिशत जमीनें छोटे किसानों में बाँटी गई हैं तो जापान में 33 प्रतिशत, लेकिन भारत में आजादी के बाद से तो केवल 2 प्रतिशत ही जमीन का आवंटन हुआ है।

एमसीसी और पीडब्लूजी संगठनों की हिंसक गतिविधियों के चलते इनसे प्रभावित कई राज्यों ने पहले ही प्रतिबंध लगा रखा है। इनमें बिहार और आंध्रप्रदेश प्रमुख हैं। इन राज्यों के खेतिहर मजदूरों के बीच इन चरम वामपंथी गुटों के लिए भारी समर्थन पाया जाता है। इस खेप में अब छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश भी आ चुके है। छत्तीसगढ़ का बस्तर जिला, जिसकी सीमाएँ आंध्रप्रदेश से लगी हुई हैं, में नक्सलवादी आंदोलन गहराई तक अपनी पैठ जमा चुका है। प. बंगाल से शुरू हुआ नक्सलवाद अब उड़ीसा, महाराष्ट्र, झारखंड और कर्नाटक में भी पैर पसार चुका है।

दुनिया के एकमात्र हिन्दू राष्ट्र को खत्म कर इस समय माओवादी तत्व भारत और नेपाल में अपने चरम पर हैं और चीन की तथाकथित 'शह' से भूटान और भारत के पूर्वोत्तर राज्यों में सक्रिय उग्र संगठनों से हाथ मिलाकर नेपाल के पशुपतिनाथ से लेकर आंध्रप्रदेश के तिरुपति तक 'लाल गलियारा' (रेड कॉरिडोर) बनाने की जुगत में लगे हैं। इनकी मंशा है कि दक्षिण भारत के कुछ हिस्सों को भारत से अलग किया जा सके तथा पूर्वोत्तर राज्यों को भी भारत से अलग किया जा सके, ताकि माओवादी अपना शिकंजा इन राज्यों पर जमा उन्हें भी नेपाल की भाँति हड़प लें।

अपने प्रभाव वाले क्षेत्रों में नक्सली सत्ता प्रतिष्ठानों को भी चुनौती देने लगे हैं। वे लोगों से पैसे वसूल करते एवं समानान्तर अदालतें लगाते हैं। उनके अदालत में दी जाने वाली सजाएँ घोर उत्पीड़क एवं अमानवीय होती है। सत्ता का संरक्षण एवं प्रशासन तक पहुँच न हो पाने के कारण स्थानीय लोग अब नक्सलियों पर ही विश्वास करने लगे हैं। अशिक्षा और विकास कार्य की उपेक्षा ने स्थानीय लोगों एवं नक्सलियों के बीच के गठबंधन को और भी मजबूत बना दिया है। आज हमें इस सत्य को स्वीकार करना ही होगा कि नक्सलवाद अपने मूल में कानून और व्यवस्था की समस्या नहीं, बल्कि राजनीतिक और आर्थिक समस्या के साथ-साथ सामाजिक और सांस्कृतिक समस्या भी है। इसका समाधान राजनीतिक तरीकों, आर्थिक-सामाजिक विकास और सांस्कृतिक समायोजन द्वारा ही हो सकता है।

बस्तर (छत्तीसगढ़) में नक्सलवाद

भारतवर्ष की बड़ी समस्याओं में नक्सली हिंसा का स्थान सबसे ऊपर की पंक्ति में दर्ज है, और इसमें बड़ी मुश्किल तो यह है कि लगभग तीन दशक के भारी खून-खराबे के बावजूद न तो सरकारें और न ही समाज किसी हल के नजदीक पहुँच पाया है। नक्सल समस्याएँ छत्तीसगढ़ में भी पैर पसारे हुए है। शासन और व्यवस्था की निरंतर अनदेखी के कारण उपेक्षित क्षेत्रों में नक्सली अपनी गतिविधियों को खतरनाक ढंग से बढ़ाते जा रहे है। नक्सली शोषित आदिवासियों और ग्रामीणों को हिंसक संघर्ष के लिए उकसा रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्र में नक्सलवाद ने सामाजिक तनाव का रूप ले लिया है। समृद्ध भूमिपतियों का शहरों की ओर पलायन हो रहा है। इससे खेती चौपट हो रही है। जमीन पर अधिकार को लेकर जातीय संघर्ष भी बड़े हैं साथ ही हिंसक संघर्ष भी देखने को मिल रहे है।

6 अप्रैल, 2010 को दंतेवाड़ा के चितलंनार क्षेत्र में नक्सलियों ने 76 सीआरपीएफ जवानों की हत्या कर उनसे हथियार लूट लिए थे। यह नक्सलियों का अब तक का सबसे बड़ा हमला था। इसके बाद नक्सलियों ने सुकमा के पास एक यात्री बस को बारूदी सुरंग से उड़ा दिया था। इस हमले में 31 लोगों की मौत हो गई थी जिनमें एपीओ के 15 जवान तथा 16 आम नागरिक थे। छत्तीसगढ़ के नारायणपुर में सीआरपीएफ के 26 जवानों की हत्या कर नक्सलवादियों ने एक बार फिर यह जता दिया कि आज उनकी ताकत काफी बढ़ चुकी है और वे पुलिस एवं अर्द्ध सैनिक सुरक्षा बलों की किसी भी चुनौती से न सिर्फ निपटने में सक्षम है बल्कि उनके खिलाफ जवाबी हमला भी कर सकते है।

नक्सलवादी समस्या आज किसी अकेले राज्य की समस्या नहीं है, बल्कि इसने कई भारतीय राज्यों की एक सामयिक आन्तरिक सुरक्षा समस्या का रूप अख्तियार कर लिया है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि इसे वर्तमान की अहम समस्या के रूप में देखा जाए और नासूर बन चुके इस रोग का नए सिरे से सभी राज्यों के दूरदर्शी समन्वित सहयोग से इलाज किया जाए। सम्प्रति दूरदर्शी उपायों से नक्सली विचारधारा को फैलने से

रोका जा सकता है और उसका स्थायी समाधान निकल सकता है। वस्तुत: चाहे हिंसा नक्सलियों द्वारा हो अथवा सरकार द्वारा, उसका समर्थन नहीं किया जा सकता। इनकी हिंसा का शिकार अन्तत: वही आमजन होते हैं जिनके लिए ये कुछ प्राप्त करना चाह रहे है। यह सार्वभौमिक सत्य है कि हिंसा से प्राप्त की हुई व्यवस्था ज्यादा दिन तक चल नहीं पाती और अन्तत: टूट जाती है।

दूसरी ओर सरकार को भी कानून-व्यवस्था की समस्या से ऊपर उठकर इनकी मूलभूत समस्याओं को दूर करने के प्रयास करने चाहिए। नक्सली विचारधारा से प्रभावित गरीब एवं मजदूर जनता को राष्ट्र की मुख्य-धारा से जोड़ने के लिए हमारे लोकतांत्रिक अंगों-केन्द्र एवं राज्य सरकारों, मीडिया और गैर-सरकारी संगठनों सभी को मिलकर सामूहिक प्रयास करने की आवश्यकता है।

संदर्भ

- मुन्नी, पडलिया. (2009). *भारत में पंचायती राज व्यवस्था*. नई दिल्ली: अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा .) लि.
- वीर, डॉ. गौतम. (2009). *पंचायती राज व्यवस्था*. नई दिल्ली: ओमेगा पब्लिकेशन .
- देवपुरा, प्रतापमल. (2012). *हमारा पंचायती राज*. नई दिल्ली: अंकुर प्रकाशन .
- तलवार, वीर भारत. (2009. *नक्सलवाड़ी के दौर में*. नई दिल्ली: अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि.
- डॉ. पुरण मल. (2009). *पंचायती राज एवं दलित नेतृत्व*. जयपुर: आविष्कार पब्लिशर्स.
- डॉ.इकबाल खान. (2009). *पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास योजनाएँ*. जयपुर: शिव कुमार शर्मा रितु पब्लिकेशन.
- देवपुरा, प्रतापमल. (2012). *हमारा पंचायती राज*. नई दिल्ली: अंकुर प्रकाशन.